"बृजांचल की लोकगाथाओं में वर्णित नैतिक मूल्य"
(एक संक्षिप्त विवेचन)

डॉ0 निषा षर्मा
हिन्दी विभाग,
एम0जी0 बालिका महाविद्यालय, फिरोजाबाद

डॉ0 कृश्णदेव उपाध्याय ने कथात्मक गीतों के स्वरूप और रचना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए इन्हें 'लोकगाथा' के ना से अभिहित किया है ।[1] वस्तुतः यह नाम अधिक सार्थक प्रतीत होता है क्योंकि 'लोकगाथा' लोकभावना से ओतप्रोत होती है । अंग्रेजी में लोकगाथा के लिए 'बैलेड' (ठंससंक) षब्द का प्रयोग प्राप्त होता है । पाष्चात्य विद्वान हैजालिट ने बैलेड को परिभाशित करते हुए इसे 'गीतात्मक कथानक' (प्ज पे ं सलतपबंस दंततंजपतम) कहा है । इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है– **श। ठंससंक पे ``पउचसम दंततंजनतम सलतपबए ``वदह वि ादवूद वत नदादवूद वतपहपदे जींज जंससे ``जवतलश्ण्**[2]

'ब्रजांचल की लोकगाथाओं' से अभिप्राय उस वाचिक परम्परा से है, जो ब्रजभाशा के निजी क्षेत्र में रहने वाले लोकगायकों के सुमधुर कण्ठ से निर्गत प्रबन्धात्मक गेय गाथाओं के रूप में पाई जाती है। ब्रजभाशांचल के क्षेत्र में पष्चिमी उत्तर प्रदेष के जिले मथुरा, आगरा, फिरोजाबाद, एटा, मैनपुरी, अलीगढ़, हाथरस और बुलन्दषहर के अतिरिक्त राजस्थान के धौलपुर, धौलपुर जिले, हरियाणा का पलवल जिले का भाग तथा मध्यप्रदेष के भिण्ड और मुरैना जिलों का कुछ भाग सम्मिलित है । इस ब्रजभाशाचल में व्यवहृत ब्रजलोकगाथाओं के गायन की सुदीर्घ परम्परा है । इन गाथाओं में कालजयी जीवनमूल्य एवं नैतिक आदर्ष विद्यमान हैं तथा संस्कारित लोकमन अनुगुंजित हो रहा है ।

ब्रजांचल की लोकगाथाओं के अनेक रूप और विविध आयाम हैं । धर्मरक्षा, मान–मर्यादा–रक्षा, षौर्य, दानषीलता, धर्माचरण, सदाचार, षीलनिरूपण, सत्य एवं कर्म की जययात्रा, न्याय–नीति का संरक्षण, प्रेम व करुणा, भक्ति–ज्ञान–वैराग्य की प्रतिश्ठा इन लोकगाथाओं के प्रेरक तत्व हैं । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, जैसे नैतिक आदर्ष एवं आधारभूत समाज–संरक्षक कालजयी गुण इनमें पुश्टतापूर्वक विद्यमान है । देष–काल–परिस्थितिगत वर्ण, रंग, जाति, लिंग, आश्रम–व्यवस्था, व्यवसाय, भाशा–बोली, वर्ग आदि विभेदों को विखण्डित करते हुए षाष्वत मानव–मूल्यों की प्रतिश्ठा से ये गाथाएँ कभी क्षीण तथा अस्तित्वविहीन नहीं होती ।

यद्यपि लोकगाथाओं के अध्ययन व चिन्तन में किसी देष विषेश अथवा क्षेत्र विषेश के जनमानस का मूल्यांकन निहित हो सकता है, किन्तु अपने मूल्यमानों में ये वैष्विक होती हैं । इनमें एकल भेद– विवर्जित ऐसे जीवन–मूल्यों को प्रतिश्ठित करने की षक्ति होती है कि ये लोकजीवन की संस्कारषालायें बन जाती हैं । ब्रजांचल की लोकगाथाएँ इसी सत्य तथ्य के समीप हैं ।

---

[1] भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन–डॉ0 कृश्णदेव उपाध्याय, पृ0 492

[2] इन्साक्लोपीडिया अमेरिकाना–(खंड–ण्ण्, बैलेड), पृ0 94

भारतदेष धर्म की भूमि है और भारतीय संस्कृति की चेतना ही धर्म है । यहाँ का प्रत्येक कार्य धर्मानुमोदित होने के कारण ही प्रषंसनीय होता है । धर्म के दस (10) लक्षणों को प्रतिपादित करते हुए मनुस्मृति में उल्लेख किया गया है–

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं षौचमिन्द्रियविग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दषकं धर्मलक्षणम् ।।"[1]

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, षौच (पवित्रता), इन्द्रियनिग्रह, धी (बुद्धि), विद्या, सत्य और अक्रोध–ये दस धर्मलक्षण हैं । धर्म ही समग्र मानवजाति की कल्याण–भावना और षुभाचरण की कामना है । धार्मिक संस्कार से मनुश्य के तन–मन और आत्मा का परिश्कार होता है । इसीलिए कहा गया है–**"आचारः परमो धर्मः।"** मानव जीवन की सफलता के जो नैतिक मूल्य और आदर्ष महान् आत्माओं, विद्वानों तथा ऋशि–मुनियों ने निर्धारित किए हैं वे सब धर्म के ही मूल में सन्निहित हैं । भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों, आदर्षों और संस्कारों की महत्ता सर्वोपरि है क्योंकि यहाँ से जो आदर्ष तरंगित होता है वह मानव के देह और आत्मा में संगृहीत होकर षील के रूप में आचरण में परिणत हो जाता है ।

धर्मषास्त्रों ने मनुश्य को सचेत करते हुए लिखा है कि उसे सुसंस्कृत, नैतिक मूल्यों को पुश्ट करने वाला और आचरण में षुचिता वाला होना चाहिए । संस्कार सिंचित सत्य और धर्म के आचरण से मानव भगवत्कृपा एवं भगवद् भक्ति प्राप्त करने में सफल हो सकता है । नैतिक मूल्यों के मूल में 'श्रेय' और 'प्रेय' दो प्रमुख तत्व मानते हुए नीति विषारदों ने जहाँ 'श्रेय' को प्रधानता प्रदान की है, वहीं 'प्रेय' का प्रामाण्य स्रोत सदिच्छा को स्वीकार किया है । वस्तुतः 'नैतिकता' के निर्धारण में जहाँ एक ओर 'षुभ' की अवधारण की गई है, वहीं दूसरी ओर 'औचित्य' अथवा 'कर्त्तव्यपालन' का अनुषासन समान रूप से बना रहता है ।

ब्रजांचल की लोकगाथाएँ यथार्थ में जनपदजनों की संस्कारषालाएँ हैं । प्रजावर्ग को ऋजु, समरस, प्रेमाप्लावित एवं षीलयुक्त बनाना ही इनका प्रमुख लक्षण एवं कार्य है । वे भक्ति, प्रेम, धर्म, आदि पर आधृत गेयात्मक कथाओं के माध्यम से एक ओर 'षुभकिंवा मंगल' का बोध कराती है तो दूसरी ओर 'कर्त्तव्य बोध' कराते हुए कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर होते रहने का निर्देष देती रहती हैं । इनके चरित्र–नायक मंगलकामना से षुभ तथा सत्कर्म करते हुए अमंगल एवं अधर्म का विनाष करते हैं । उनका स्वभाव होता है नीति की रक्षा करना, मर्यादा का निर्वाह और षील–सदाचार की स्थापना करना। यही इनके चरित्र चरित्र का नीतिगत उज्ज्वल पक्ष कहा जा सकता है । गहन एवं सूक्ष्म दृश्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि ब्रज की लोकगाथाओं में जीवन का सच्चा रस है, आनन्दनाभूति है तथा जड़–चेतना के एकात्म बनाने की विलक्षण ऊर्जा भी विद्यमान है । 'सत्यं–षिवं–सुन्दरम्' की प्रतिश्ठा के साथ–साथ मानवजाति के कल्याण सन्देष, लोक आस्थाएँ, लोकविष्वास, लोकादर्ष, लोक संस्कृति, की मूलभूत निश्ठाएँ, प्रकृति–परिवेष, कर्म–सौन्दर्य एवं नैतिक संस्कारों के आदर्ष इन गाथाओं में प्रभावी रूप से समाहित रहते हैं ।

[1] मनुस्मृति–6/92

ब्रज–अंचल की लोकगाथाओं में वर्णित प्रमुख नैतिक मूल्य–

ब्रजांचल की लोकगाथाओं में नैतिक संस्कारों एवं मूल्यों की अग्र लिखित षीर्शकों के माध्यम से समीक्षा की जा सकती है जो इस प्रकार है–

(क) सदाचरण, (ख) धर्माचरण, (ग) वैचारिक पवित्रता,
(घ) लोकमंगलविधायक कर्म, (ड़) सद्वाणी–वाणीसंयम, (च) समर्पण व सेवाभाव,
(छ) दान–मान, (ज) दया आदि आत्म गुणों का अनुपालन
(झ) अकरणीय कर्मों का परित्याग (×ा) आत्मानुषासन ।

(क) सदाचरण–

ब्रज–अंचल की लोकगाथाओं के नैतिक–संस्कार का एक विषिश्ट पक्ष इनके चरितनायकों, केन्द्रीय पात्रों और प्रमुख पात्रों के 'सदाचरण' से सम्बन्धित है । सज्जनों का आचरण ही सदाचार कहलाता है, जो लोग अच्छा ही बोलते–कहते हैं, अच्छा ही व्यवहार करते हैं और अच्छा ही आचरण करते हैं, वे सज्जन कहलाते हैं और उनका आचरण सदाचार है । कहा है–(सतां सज्जनांनामाचारः सदाचारः, ये जनाः सद् एवं वदन्ति, सद् एवं व्यवहरन्ति, सद् एवाचरन्ति च ते एव सज्जनाः भवन्ति। ते यथा व्यवहरन्ति, यथाऽऽचरन्ति स एव सदाचारः सदाचरणं वा भवति ।) महाभारत में भी सत्य ही लिखा है–**"वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्"** अर्थात् सदाचार की यत्नपूर्वक रक्षा करने चाहिए । तथा च–**"सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्नरःषतं वर्शाणि जीवति"।** अर्थात् सभी लक्षणों से रहित होने पर भी जो व्यक्ति सदाचारी होता है ..... वह सौ वर्शों तक जीवित रहता है और दीर्घायु, कीर्ति, लक्ष्मी आदि को प्राप्त करता है ।

ब्रज की लोकगाथाओं में अनेक ऐसे चरित्र हैं जिनका व्यक्तित्व सत्याचारण (सदाचार) तथा धर्माचरण के संस्कार से उज्ज्वल है और वे अपने सदाचार संकलित नैतिक गुणों से उदात्त मूल्यों को स्थगित कर चुके हैं । वे "आचारः परमो धर्मः" के मूर्तिमान् विग्रह हैं । इन गाथाओं में एक ओर 'सत्यवादी हरिष्चन्द्र' जैसे नायक (राजा) का उदात्त व्यक्तित्व है जो अपने सत्य–व्यवहार, प्रतिज्ञापालन, दानषीलता और धर्मपालन जैसे आदर्ष गुणों से देवताओं को भी स्तंभित करता है । राजा हरिष्चन्द्र जहाँ उदार व दयालु हैं, वहीं वह नैतिक मूल्यों का संरक्षक भी हैं । दूसरी ओर रानी तारावती एक पतिव्रता नारी का आदर्ष प्रस्तुत करती हैं तथा धर्माचरण हेतु विपत्ति में अपने स्वामी का साथ देती हैं। वह भी एक उदात्त और आदर्ष नारी–चरित्र है, जो नैतिक मूल्यों के आदर्ष स्थापन में तथा सदाचार की प्रतिश्ठा में पति की सहधर्मिणी है । 'गाथा सत्यवादी हरिष्चन्द' में गायक ने लिखा है–**"सत तजौ लगै पातक भारी"** और **"छोड़ौगे स्वामी सत्य को तौ होगी धर्म की हानी है"**[1] । रानी तारावती के ये प्रेरणादायक वचन नारियों के नैतिक बल के आदर्ष हैं । गाथाकार का 'जो सत्य धर्म पर बलिहारी–वा जन के साथी असुरारी' ऐसा विष्वास पूरी गाथा में अनुग्रंजित है तभी तो यह दोहा लोक विख्यात है–

"चन्द्र हरै सूरज ठरै, ठरै जगत व्यवहार ।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द कौ, टरै न सत्य विचार।।"

[1] गाथा सत्यवादी हरिष्चन्द–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 275

लोकगाथा 'ढोला' या 'ढोलामारू' में राजा नल और रानी दमयन्ती (दुमैती) का व्यक्तित्व सदाचार के आलोक से आलोकित है । सत्य, न्याय और धर्म के मार्ग का अनुसरण करके ही वह यषस्वी होता है । वह विद्यावान, विनयषील, धैर्यवान्, मर्यादाप्रिय, कर्त्तव्यनिश्ठ, आस्थावान् तथा सभी का षुभाकांक्षी व्यक्तित्त्व है । वहीं रानी दमयन्ती भी नल की सहधर्मिणी बनकर आदर्ष नारी–षिरोमणि बन जाती है । ये दोनों चरित्र भी सदाचरण एवं धर्माचरण की मर्यादा हैं । दोनों ही प्रिय और मृदुभाशी हैं, साथ ही सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, क्षमा, धृति, अक्रोधादि सदाचरणों से विभूशित व्यक्तित्व रखते हैं। नल की क्षमाषीलता और दयालुता प्रसिद्ध गुण हैं, वहीं परहितार्थ दौत्यकर्म की स्वीकृति से हृदय की विषालता प्रतिबिम्बित हो रही है, जैसे कि–

"याचक बनि आइ गयो देवता, माँगे सो पावै।"[1]

राजा नल सम्मान के योग्य व्यक्ति का सम्मान करता है–**"पैर छुए नल भूप नै आसनु दयौ बिछाइ", "बड़े नम्र आदर ते जानें पिरथम कौ लायौ सीसु नबाई"**[2] । इन कथनों में नल की नम्रता झलकती है । "गाथा महादेव कौ ब्याह" में भगवान षिव की नैतिकता प्रभावोत्पादक है तो 'नलपुराण' (ढोला) में नल का आदर्ष चरित्र व्यक्त हो रहा है, यथा–

1– **"जा जुग में बेटी कहि कें बोले, तिरिया कह कैसे बोले ।**
जनम–जनम के पाप चढ़े, मोपै जनम–जनम के पाप चढ़ै।।"[3]

और 2– **करम की चों बनती हेटी, नलु राजा यों कहै धरम की तू लागति बेटी।**
कमावै अव मति री पारौ, तू लगै हमारी धीय, तिहारौ हौं लागत हूँबापै।
जो कुघरी दे रही लपेटा–वचन पलटि नहिं होऊँ, हतौ हूँ राजा पिरथम कौ बेटा ।[4]

इन उद्धरणों में षिव का कथन धर्म–संस्थापन की दृश्टि से उदात्त है, तो नल का कथन धर्म और सत्याराधन दोनों ही दृश्टियों से आदर्ष है ।

"गाथा पूरनमल" लोकगाथा में अपनी माता सदृष मौसी के प्रणय–प्रस्तार को अस्वीकत करने वाला पूरनमल धर्म और नैतिक संस्कार के उच्चतम आदर्ष को स्थापित करता है । पूरनमल की सत्यवादिता और चारित्रिक षुचिता का साक्षी एक तोता है जो कहता है **"सुनि राजा रे तेरौ कुमरु सतवादी"**[5] और दासी भी पुश्ट करती है **"पूरनमल कच्चौ दूध, दूध में जामन दीयौ"**[6] अर्थात् पूरनमल तो कचे दूध के समान पवित्र है ।

'सुरही' लोकगाथा ब्रजभाशा की एकमात्र ऐसी पषुगाथा है जो हिंसा पर 'अहिंसा' का वर्चस्व स्थापित करती है । वात्सल्य और सत्यादर्ष भाव की चरम परिणति जीवन में सत्य–वचनबद्धता को जन्म देती है । निर्भीकता और दृढ़ता जैसी षक्तियाँ इस भाव के प्रतिफल हैं । गो–संतति में भी यह धरोहर सुस्थिर है । सिंह जैसा हिंसक जीव भी मानवीय संबंधों की षक्ति से विचलित हो

---

[1] ढोला–दमयंती स्वयंवर, पृ0 176
[2] नलपुराण, पृ0 40
[3] गाथा महादेव कौ ब्याह, ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 1
[4] नलपुराण, पृ0 15
[5] गाथा पूरनमल पृ0 47
[6] गाथा पूरनमल पृ0 48

जाता है । 'हरदौल की गाथा' में हरदौल और रानी चम्पावती (देवर–भाभी) के पवित्र माँ–बेटा जैसे प्रेम को भी षंका की दृश्टि से देखा जाता है । किन्तु इस पवित्र और नैतिक प्रेम के लोकादर्षन ने हरदौल को लोकदेवता बना दिया । विशाक्त भोजन करने के पष्चात् प्रायः मूर्च्छावस्था में वह अपनी भाभी से केवल यही कहता है–

"धरती पै मोइ सुलाइ दै, सुन्दर जल लाइ हनवाइ दै ।
नेंक गंगाजलु मंगवाइ दे–पंजामृत बना खबाइ दै ।"

और फिर भाभी चम्पावती कहती है–

"सुनकर वचन कुँवर के भावज गऊ मँगाइये, उसुवरन इनमें सींग मढ़ि विप्रन कूँ दान कराइये । तुलसीदल गंगानीर गऊन कूँ दियौ पिबाइदै । जै–जै गगन में देवता सुमन बरसाइ है।"[1]

सदाचार मूलक सत्य, धर्म के पथ का पथिक मनोभावों की षुचिता पर पहले ध्यान देता है। 'गाथा राजा महीपाल' में षिव के कथन से सिद्ध होता है कि–

"परधन पत्थर करिगिनै, पर तिरिया मात समान ।
जो इतने पै डटि चलौ, बाइ सहज मिलो भगवान।।
गंगा न्हावन कूँ चलौ, तजै कपट अभिमान ।
जो जो पग आगे धरै, सो सौ जग्य समान।।"[2]

यही वे नैतिक मूल्य हैं जो संस्कार के सदाचारमूलक सत्य और धर्माचरण के आदर्ष को प्रतिश्ठित करते हैं ।

'गाथा गोपीचंद' ने 'मात वेद की खानि पुत्र तेरौ बड़भागी' प्रस्तुत करके एक आदर्ष लोक के समक्ष रखा है ।

"गोपीचंद के हिरदय में जब ज्योति जगाई । रोग धोग के गये भागि, अंग में भसम रमाई है।
भाजि गए काम क्रोध माया । मोह भयौ सब दूरि अमर भई कंचन–सी काया ।।"[3]

ख– वैचारिक पवित्रता (सद्विचार)–

सात्विक भाववृत्तियों के मन्थन से समुद्भूत विचार–सुधा मानव–जगत् को जीवन्तता प्रदान करती है एवं विचारों के अनुरूप ही आचार तथा व्यवहार सम्पादित होता है । सत्संग से प्राप्त संस्कारजनित–विचार व्यवहार जगत् मे सौख्य, सुषीलता, मुदिता तथा प्रियता जैसे अनेक स्गुणों का विकास करते हैं । ब्रजांचल की लोकगाथाओं में नायक–नायिकाओं, केन्द्रीय या प्रमुख पात्रों के उत्तम आचरण, सद्व्यवहार एवं श्रेश्ठ कार्यों के मूल में सद्विचारों की प्रेरणा बहुत ही स्पश्ट हुई है । 'मारू का गौवां' लोकगाथा में पति की प्राणरक्षा के निमित्त 'मारू' नायिका द्वारा व्यक्त धार्मिक क्रिया का प्रेरक 'ढोलकुँवर' का यह सद्विचार है कि–

"पुन्नु करें ते पापु कटतु है मारू जामें देरी मति करें । पुन्नु बचावै जीअ ।
हम सवा पहर पीछे धँसे, जो जूँ विरप जिमाई आ बुद्ध की धीअ ।"[4]

---

[1] हरदौल की गाथा, (संकलन–ब्रज की लोकगाथाएँ और कथागीत), पृ0 104
[2] ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 57
[3] गाथा गोपीचंद–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 78
[4] मारू कौ गौना–ढोला, पृ0 306

मोहवष अपने कर्त्तव्य से च्युत हुए ढोल कुँवर को एक तोता अपने सद्विचारों से कर्त्तव्य का स्मरण कराता है–

"तब जानूँगो तोइ । कहि नायें आयौ मात–पिता तें, अकें नेंक
दरस कराइदे उनके मोइ । इतनी सुनि कें सूआ मरमानि कौ
पालतू कहि रह्यौ, लाला कहा गयौ घबराइ । रौरब नरक परैगौ
ढोला तेरौ यांसु काग नहि खाइ ।
तू जा दरवाजे ते हटि जाइयो–तेरे पिता कौ अंसु घटि जाइयौ।
बँधुआ बनि चाकी पीसैगौ–तोइ नरवर नाइ दी संगौ।
चौं न जनों तू राजा नल की छोहरी, देतौ काऊ बड़े घरन में ब्याइ।
दूध लजायौ तेने छत्राणी कौ जो तू धरै पिछमनो हटि के पांइ।।"[1]

इस उद्धरण में तोता ढोला को कर्त्तव्यपालन हेतु प्रेरित करता है । लखियावनप्रसंग में महोहग्रस्त राजा नल को उसका घोड़ा ही समझाते हुए कहता है–

"जो तू आयौ जगत में, जगत सराहे तोइ।
ऐसी करनी करि चलौ, पाछे हँसी न होइ।।"[2]

गाथा 'महादेव कौ ब्याहु' में अधोलिखित वैचारिक पवित्रता प्रभावोत्पादक एवं प्रेरणादायिनी है–

"बामन मारें बंसु जातु ऐ, जोगी मारें नामु जातु ऐ ।
पीपर पाती न तोरिये, तेरौ हिन्दू धरमु घटि जाइयौ।।"[3]

'रुक्मिणी–मंगल' गाथा में कुमारी कन्या का हरण कन्या और हरणकर्त्ता दोनों के लिए निशिद्ध तथा अपयष दिलाने वाला है । ऐसा सद्विचार ग्रहणीय है–

"मति क्वारी ले चलौ, मति मेरौ नाम धरावै ।
चौं अपजस आजु कमावै ।"[4]

'गाथा पूरनमल' में सत्यनिश्ठ और धर्मव्रती पूरमल का यह कथन वैचारिक पवित्रता का सुन्दर उद्धरण कहा जा सकता है–

"सुनि मौसी री, तू लगै धरक की माइ ।"

और **"परनारी पैनी धुरी, कोइ मति लागौ अंग।**
रावन से जोधा गए, परनारी के संग ।।"

का उद्घोश करने वाली गाथाएँ बड़े ही स्पश्ट षब्दों में परधन को पत्थर के समान और परनारी को माता के समान समझने का सद्विचार किसी–न–किसी रूप में व्यक्त करती है ।

'गाथा गोपीचंद' में संसाद को सपनों जैसा असत्य बताने वाली यह उक्ति सद्विचार की अनूठी गाथा है–

---

[1] मारू कौ गौना–ढोला, पृ0 306
[2] मारू कौ गौना (लखियावन), पृ0 261
[3] गाथा महादेव कौ ब्याहु–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 3
[4] रुक्मिणी मंगल–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 45

"बिरथा है सपनों का संसार । झूँठी है धन–दौलत बेटा झूँ है परिवार।"[1]

इस प्रकार यही अभिप्राय निकलता है कि ब्रज–आंचल की लोकगाथाओं में सात्विक विचारों और वैचारिक पवित्रता की बहुलता दृश्टिगत होती है ।

ग– लोकमंगल विधायक कर्म–

भारतवर्श ऐसी धर्मभूमि और कर्मस्थली है, जहाँ सदैव "वसुदैव कुटुम्बकम" तथा "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की मंगलकामना करते हुए लोकगीत गाए जाते हैं । यहीं पर "कर्मण्येवाधिकारस्ते..... " तथा "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेत् षतसभाः" के उपदेष देकर मनुश्य को कर्त्तव्यपथ पर चलने के लिए प्रेरित किया जाता है । इसी भूमि पर श्रेश्ठ आचार्य अपने षिश्यों को दीक्षित करते हुए अनुषासित करते हैं कि–

"यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि त्वया सेवितव्यानि, नो इतराणि।"

कहने का तात्पर्य है कि यहाँ के धर्मषास्त्र संस्कार–समन्वित मानव को सत्कर्म सम्पादनार्थ प्रेरणा देते रहे हैं ।

ब्रजांचल की लोकगाथाओं में भी समग्र रूप से आत्मपरिश्कारमूलक संस्कारों का निदर्षन किया जाना दृश्टिगत होता है । ब्रजलोकगाथाएँ जिन सत्कर्मों का आख्यान करती हैं वे आत्मकल्याण के साथ–साथ लोकमंगल के लिए भी आत्मुपयोगी होते हैं । यज्ञ या हवन आदि जैसे सत्कर्म और धार्मिक कृत्य जहाँ आत्मकल्याण कारक हैं, वहीं पर्यावरण को षुद्ध रखने के कारण लोमंगलकारक भी हैं । ब्रज लोकगाथाकार सत्कर्मों में भी श्रेश्ठ कर्मों को सर्वोत्तमता से स्थिर करता है । क्योंकि वे परहित और लांकमंगल की भवना से सम्पादित होते हैं । अपनी प्रजा के कल्याण के लिए चिन्तित राजा नल को देखकर दमयन्ती कहती है–

"सुनौ भँवर सासुल के हजारी । गरीबन की तुमकुँ चिन्ता भारी।
जाही ते ठुकराइ देवता कूँ, तिहारे गरे में माला डारी ।।"[2]

'नलपुराण' लोकगाथा में ही यष और वैभववर्धक, इहलोक एवं परलोक के पावन करने वाला तथा देवानुग्रह प्रदायक पुत्रेश्टि–यज्ञ राजा पिरथम ने गुरु के सत्परामर्ष से करने का उल्लेख हुआ है किन्तु उसमें लोकहित के श्रेश्ठ कर्मों को प्राथमिकता दी गई है, उदाहरणार्थ–

"गुरु कही सो अंग समाई । एक सौ एक जाने जग्य रचाई ।
कुँआ बाबरी बाग बगीचा, नदियन के पुल दए बँधवाई ।
धरमसाला मठ मंदिर मुकतेरे, सदावरत दियौ खुलवाई ।
पाठसाला और लगान मुक्ति सदाचार चहुँदिसि फैलाई ।
ऐसौ दानी भूप बनौ है आसपताल रह्यौ है खुलवाई ।
रामभजन नित होइ कीर्तन संतत सेवा करै बनाई ।।"[3]

'हीरामन की गोठ' में हीरामन अपने समय का गौरक्षक, सिद्धों को सुरभी गाय का दुग्धपान कराने वाला, वीर, पराक्रमी, नेत्रहीनों को नेत्र, कोढ़ियों को सुन्दर काया और निःसन्तानों को सन्तान देने वाला है । अद्भूत सिद्धिप्राप्त हीरामन अपने लोकमंगल विधायी कृत्यों के बल पर लोकपूज्य

---

[1] गाथा गोपीचंद–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 82
[2] नलपुराण–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 49–50
[3] ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 582

देवता बन गया । इसीलिए लोकप्रसिद्धि है कि–**"मौज भई धरनी पै घर–घर होत नए आनन्द, अमर हीरामन भएऽऽऽऽऽऽजी"[1]।**

'गाथा जाहरपीर' में जाहरपीर या जाहरवीर (गुरु मुग्गा–गोंगा) का गोरक्षा में आत्म बलिदान और पृथ्वीप्रवेष लोकमंगल का कारण है । आज यह गाथा बहुत ही लोक विख्यात हो गई है।

'ढोला' जैसी महागाथा का चरित्रनायक राजा नल जो दिव्यषक्तियों से सम्पन्न है, वह भौमासुर, तूरिम जैसे भयंकर दैत्यों से लोक की रक्षा करता है । अपने लोकमंगलकारी कर्मों के कारण ही वह यषस्वी और लोकप्रिय बन जाता है–**"जबर म्हांकरि आए काजे । तिहारे ही परिताप चिरैया कूँ झपटै नही बाजे"** और **"जबर तिहारे ठाट । नाहर और गइयां एँ पिंगुल में पानी पिआइ आए एक ही घाट"[2]।**

इससे सिद्ध होता है कि ब्रज की लोकगाथाओं में सत्कर्म के संस्कार लोकमंगल कारक हैं ।

(ड़) सद्वाणी–वाणीसंयम–

महान समाज सुधारक एवं महाकवि कबीरदास ने बड़े ही सुन्दर और सरस षब्दों में वाणी संयम का महत्त्व बतलाया है–

"ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोइ।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होइ।।"

"बानी में अमृत बसै, जो कोई बोले जानि ।
हिये तराजू तौलिकें, तब मुख बाहेर आनि।।"

'मीठी बोली' षीर्शक से 'हरिऔध' ने भी लिखा है–

"वष में जिससे हो जाते हैं प्राणी सारे ।
मुँह खोलो तो मीठी बोली बोलो प्यारे।।"

इसीलिए यह कथन अक्षरषः सत्य है कि **"क्षीयनते खलु भूशणानि सततं वाग्यभूशणं भूशणम्"** अर्थात् मृदु वाणी ही मनुश्य का भूशण है ।

ब्रज की लोकगाथाओं में भी सद्वाणी पर काफी प्रकाष डाला गया है और वाणी संयम के लिए बहुत कुछ लिखा गया है । वाणी संयम के संस्कार से ही मनुश्य में विनम्रता एवं कृतज्ञता जैसे सद्गुणों का विकास सम्भव है । 'ढोला मारू का' लोकगाथा में मारू और रेवा, दोनों सपत्नियों के मध्य जो वाणी का संयम देखा जाता है वह मन, प्राण और आत्मा को पवित्र करने वाला है–

"अब तक भई सो भई ख्यालु मति कीजै।
मो पै जो बनि गई तकसीर माफु कर दीजै।।
मेरी वीर भैनि तू सुनि लैमेरी री–
तू मेरी सिरताज भैनि मैं दासी तेरी री ।
सुनि रेवा की बात कुमरि मुसकाई ।

[1] मारू का गौना–ढोला, पृ0 321
[2] मारू का गौना–ढोला, पृ0 321

जाने मालरजा की धीअ गले लिपटाई ।
मेरी भैनि कि रेवा मति करै दिल में सोचु।
तेरौ दोसु कछू नाइ जिआ तौ मेरे करमन कौ दोसु।।"[1]

सद्वाणी मंगलेच्छा की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है और सम्माननीय को षाब्दिक सम्मान देने का साधन भी है । गुरुजनों को उत्तर न देकर मौन व षान्त रह जाना वाली संयम का श्रेश्ठ रूप है । अप्रिय और कटुवचन सुनकर प्रतिक्रिया न देना भी वाणी के संयम का सम्पादन है, यथा–**"रामु रामु मेरी महतारी । जुग जुग जिऔर कुमर हजारी।।"[2]** और **"गोपीचंद के बहौ नीर नैननु ते जारी"** तथा **"मात वेद की खानि पुत्र तेरौ बड़भागी"** एवं **"तेरी आज्ञा सीस चढ़ाऊँ–मैं जोगी को भेसु बनाऊँ"।[3]**

'ढोला' भँवरताल प्रसंग में नल का स्वामी को उत्तर न देना वाणी संयम का अनूठा उदाहरण है–

"मालिक समुझि ज्वाबु ना दीयौ–नल ने पैना कर में लीयौ।।"[4]

"हरदौल की गाथा" सद्वाणी का स्वर्णिम पक्ष प्रस्तुत करती है जब हरदौल आत्मोत्सर्ग के समय इस प्रकार निवेदन करता है–

"भैया ते मेरौ आखिरी परनाम तू कहि दीजियो ।
बेटा समसि भावज मेरी मोकूँ क्षमा करि दीजियो।।"[5]

कोमलता, मृदुता और सरसता सद्वाणी के विषेश गुण हैं । 'मारू का गौना' गाथा में मारू का यह निवेदन वाणी की कोमलता का दिग्दर्षक है–

"सुनि सुनि रे दरवाजे वीरा । तू परबतु मेरौ बालम कीरा।
पति के मरे तें का बंधि जाइयौ चीरा । तू करतु कौन की सीख।
आँचरु रोपैं ठाड़ी है मारू, नैंक डारि दै बलम मेरे की भीख।।"[6]

इस प्रकार देखने को मिलता है कि ब्रजांचल की लोकगाथाओं में सद्वाणी और वाणी संयम के अनेक प्रसंग व उद्धरण मिलते हैं–

(च) समर्पण व सेवाभाव–

समर्पण की भावना ही सेवा का सार है । भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृश्ण ने स्पश्ट रूप में कहा है कि **"यज्जुहोशि यदष्नाति ..... तद् कुरुश्व समर्पणाम्"** अर्थात् तू जो हवन करता है, तू जो खाता है, पीता है, करताहै, उसे मुझे समर्पित कर दे । यही सेवाभाव है और भगवत्प्राप्ति तथा लक्ष्यप्राप्ति का साधन है । ब्रज की लोकगाथाओं में इसी समर्पण और सेवाभाव को बड़े ही सुन्दर एवं प्रेरक ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है । 'हरदौल की गाथा' में यह आदर्ष संस्कार दिखलाई

---

[1] ढोला–नरवर का ताल, पृ0 330
[2] गाथा गोपीचंद, पृ0 77
[33] गाथा गोपीचंद, पृ0 78
[4] ढोला–भँवरताल, पृ0 207
[5] हरदौल की गाथा, पृ0 104
[6] मारू का गौना–(ढोला), पृ0 307

देता है, जब हरदौल अपने पिता तुल्य भाई और माता तुल्य भाभी की सेवा पूरे समर्पण भाव से करता है–

"सेवा करे नित प्रेम से करि नीति की वह बात है ।
भाई पिता सम मानता भावज को समझै मात है ।
धोवै चरन नित भ्रात के भाव जके छूता पाँव है ।
भाभी भी समझे पुत्र सम देवर पै करती प्यार है।।"[1]

सरमन (श्रवण कुमार) में भी यही समर्पण और सेवाभाव झलकता है । वह अपने माता–पिता को देवतुल्य पूज्य समझता है । वह 'मातृदेवो भव' और 'पितृदेवो भव' को आदर्ष का निश्ठापूर्वक एवं श्रद्धाभाव से निर्वहन करता है । अपने माता–पिता को कॉवर में बैठाकर तीर्थाटन कराना समर्पित सेवा भाव एंव सम्मान का निदर्षक है–

"हरे हरे गोबर आँगन लिपाए, मोतिन चौक दए पुरवाह।
माता–पिता दोऊ दए अन्हवाइ, चन्दनह खौरि दइर्ध लगवाई।
अगले पल्ला धुरबल पिता, पिछले पल्ला अंधी माइ।
काँठी बाँधी तूमी लई, सब नंगर परिकम्मा दई ।
कंधा पै कॉवरि धरि लई ।।"[2]

'गाथा गोपीचंद' में गोपीचंद की माता उसे गुरु की सेवा करने और गुरु के प्रति समर्पण भाव रखने की षिक्षा देती है ।

"गुरु के वचन हिरदय में धरियो । नित उठि सेवा गुरु की करियो।
गोरख योगी दीन दयाल । काया कर दै अमर गुरु तोइ करै निहाल।
जो कछु आज्ञा करै गुरूजी, लीजौ सीस रे चढ़ाई, चरन दबाओ नाथ के।।"[3]

ब्रज की लोकगाथाओं में नारी (पत्नी) का सेवा और समर्पण भाव सर्वत्र दिखलाई देता है । 'हरिष्चन्द गाथा' में रानी तारावती की मान–मर्यादा और प्रतिश्ठा की रक्षा के लिए स्वयं बिक जाती है और 'नलपुराण' की दमयन्ती अपने पति राजा नल के सम्मान की रक्षार्थ स्वयं वन–वन भटकती है और तेली के यहाँ चाकरी (सेवा) करती है–

"मोकूँ बेचौ और खुद बिकौ, बेचौ दुलारे लाल कूँ।
चौं बात करौ हारी हारी, जो सत्य घटम पर बलिहारी।।"[4]

और – **"सरसों फटकि न जाने नल की नारि, तेलिनियाँ गारी दे रही।"[5]**

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से ज्ञात होता है कि ब्रजांचल की लोकगाथाओं के उदात्त चरित्रों में ईष्वर, गुरु, माता–पिता तथा पति के प्रति सच्ची भक्ति, सेवाभाव और समर्पण की भावना विद्यमान है ।

(छ) दान–

[1] गाथा हरदौल–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 102
[2] गाथा सरमन–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 73
[3] गाथा गोपीचंद–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 79
[4] गाथा सत्यवादी हरिष्चन्द्र–ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 74
[5] ढोला–भँवरलाल, पृ0 204

दया की भाँति ही दान–मान का उल्लेख भी ब्रजांचल की लोकगाथाओं में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है । दान का संस्कार 'अकार्पण्य' भाव अर्थात् 'अकृपणता' या 'कंजूसी न करने' से उत्पन्न होता है । इन गाथाओं में दान के महत्त्व को व्यावहारिक स्तर पर दर्षाया गया है । महादेव षिव 'महादानी' हैं । राजा पिरथम, राजा नल, रानी मंझा, दमयंती आदि पात्र दानषीलता के लिए प्रख्यात हैं वो राजा हरिष्चन्द की दानषीलता स्तुत्य है ।

(ज) दया–दानादि सद्गुणों का निदर्षन–

विभिन्न ग्रंथों में मनीशियों और महाकवियों ने सत्संग की महिमा का गान करते हुए लिखा है कि सत्संगति मनुश्य का सर्वविधि कल्याण करती है–**"जाड्यं धियो हरति सि×चति वाचि सत्यम् .... सत्संगतिः कथय किं न करोति पुसाम्"** और तुलसीदास ने लिखा है कि **"सत्संगति मुद मंगल मूला । सोइ सब सिधि सब साधव फूला"** । अतः सत्संग से ही मानव को संस्कारों की प्राप्ति होती है । सत्संगजन्य भक्ति संस्कार जगदीष्वर भगवान की सुखद गोद में पहुँचा देते हैं । धर्मषास्त्रों एक गृहस्थ द्वारा पालनीय एवं करणीय कर्मों तथा ब्रह्ममुहूर्त्त में जागरण से षयनपर्यन्त स्नान, पूजा– पाठ, दान–दयादि सभी छोटे–बड़े संस्कारित कर्मों का अत्यन्त सूक्ष्मता एवं विषदतापूर्वक प्रतिपादन किया गया है ।

ब्रजांचल की लोकगाथाओं में दया, दान जैसे आत्मगुणों के संस्कार का भी व्यापक निदर्षन हुआ है । 'ढोला' गाथा में दयाविहीन संत की मृत्यु की कामना तक की गई है एवं ऐसे संत को कसाई के समान कहा गया है–**"बिना दया के सन्त कसाई जैसो"** ।[1] यह कथन मात्र संत के लिए ही नहीं मानवमात्र के लिए संकेत है । ब्रज की गाथाओं में सत्पात्र 'दया सर्वभूतेशु' की उदात्त भावना से युक्त दिखलाई देते हैं । राजा नल 'हिंसा न जीव काऊ की होइ'[2] के सिद्धान्त का पालन करता है । वह "अहिंसा परमो धर्मः" का उपासक है । आपद्ग्रस्त हंस की प्राणरक्षा में उसका दयाभाव ही उजागर होता है 'देखत गोदी लियौ उठाइ' । यह दयाभाव पषु–पक्षियों में भी दृश्टिगत होता है । स्वयं प्राकृतिक प्रकोप का षिकार हंस एक चूहा (मूशक) की प्राण रक्षा करता हुआ देखा जा सकता है–

"बहौ जातु बुअदीन, दया हंसा कूँ आई ।
पंखन में लाऔ दुबकाइ, बदी नेकी कूँ अटकाई।।"[3]

"नाहें रे बछरा भाविज, भाविज भखे न जाँइ, नातों तेरे बहन बिनासियों हो गाय।"[4]

दया संस्कार का यह सन्दर्भ गाथाओं को श्रेश्ठ साहित्य की श्रेणी में स्थापित करने में सक्षम है। दया के साथ यहाँ क्षमा–संस्कार भी प्रति ध्वनित हो रहा है ।

---

[1] ब्रज की लोकगाथाएँ, पृ0 20
[2] नलपुराण–ढोला, पृ0 45
[3] दमयंती स्वयंवर, पृ0 176
[4] सुरही की गाय, पृ0 42–43

(xi) आत्मानुषासन–

कल्याणकारी व्यक्ति की संस्कार–समन्वित जीवनचर्या तथा दैनिकचर्या में आत्मानुषासन का विषेश महत्त्व धर्मषास्त्रों में प्रदर्षित एंव वर्णित है । आचार–विचार एंव आहार–बिहार की षुचिता में आत्मानुषासन के संस्कार की अनिवार्यता षास्त्र–सम्पादित है । व्यक्ति के प्रत्येक आचरण में कुछ मर्यादाएँ भी निष्चित की गई हैं, जिनमें रहकर संयमित जीवनचर्या के आत्मानुषासन का संस्कार उद्दीप्त होता है । ब्रजांचल की लोकगाथाओं में आत्मानुषासन के पालनार्थ 'व्रत' का पालन महत्त्वपूर्ण सिद्ध किया गया है ।

ब्रज साहित्य की नाथ–योग–सिद्ध गाथाएँ आत्मानुषासन के संस्कार को दृढ़तर करती है क्योंकि योगी आत्म–संयम, इन्द्रिय निग्रह, मनोनिग्रह, तप–त्याग और वैराग्य की गरिमा से विभूशित होते हैं । मर्यादापुरुशोत्तम राम का चरित्र तो आत्म–संयम का अद्भुत उदाहरण है क्योंकि उनका अवतार ही लोक कल्याणार्थ हुआ था–

"राम अहेरे नीकरे लछिमन लागे हैं साथ।"[1]

राजा नल का आचरण एवं कार्य–व्यवहार लोक मर्यादा और आत्म संयम की स्थापना का अनूठा उदाहरण है–**"वचन पलटि नहिं होऊँ, हतौ हूँ राजा, पेरथम कौ बेटा"।**[2]

निश्कर्श–

निश्कर्श रूप में कहा जा सकता है कि ब्रज अंचल की लोकगाथाओं में नैतिक संस्कारों का आदर्ष एवं महत्त्व अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं अनिवार्य चारित्रिक विषेशता की दृश्टि से सरस और सलर षैली में प्रतिपादित किया गया है । ब्रज में नल की गाथा 'नलपुराण' ढोला षैली में बहुत ही प्रभावषाली ढंग से गाया और सुना जाता था (किन्तु अब नहीं) । नल का नैतिक संस्कार मानव जीवन के लिए मंगलदायक और प्रेरणाप्रद है । इसी प्रकार भगवान षिव को महादेव की सम्पानित प्रतिश्ठा प्राप्त है । 'महादेव कौ ब्याहु' में उन्हें आषुतोश कहा गया है तथा उनकी पूजा–अर्चना लोक हितकारिणी है । राजा हरिष्चन्द्र की दानषीलता, सत्य और वचनपालन के रूप में लोग प्रसिद्ध है । श्रीकृश्ण के जीवन की लोगगाथाएँ तो ब्रजभूमि को ही धराषिरोमणि बना देती हैं । राम का लोकमय्रादित जीवन मानव–जगत के लिए कल्याणकारी पथ–प्रषस्त करता है । "गाथा गोपीचंद", "गाथा पूरनमल" में गोपीचंद और पूरनमल का आत्म–संयम और त्याग का नैतिक आदर्ष किसी से छिपा नहीं है । "सुरही की गाथा", "जाहरपीर" या "जाहरवीर" के प्रसंग निष्चित रूप से नैतिक मूल्यों के महानतम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

. . . . . .

[1] सीता कौ मंगल, पृ0 234

[2] नलपुराण, पृ0 15